पावागढ़ तीर्थ की ऐतिहासिकता

□ आचार्य श्रीजगच्चन्द्र सूरि जी

भारतीय संस्कृति में तीर्थों की भी अपनी एक संस्कृति रही है। ऐतिहासिकता और पवित्रता उनकी प्रथम और मुख्य पहचान है। जैन शास्त्रों में दो प्रकार के तीर्थों का वर्णन आता है—स्थावर तीर्थ और जंगम तीर्थ। जो एक स्थान पर स्थिर रहता है उसे स्थावर तीर्थ कहा जाता है और जो चलते-फिरते रहते हैं उन्हें जंगम तीर्थ कहा जाता है।

तीर्थ की परिभाषा यह है कि जो तारता है संसार सागर से ऊपर उठाता हैं उन्हें तीर्थ कहा जाता है। भारतीय इतिहास में तीर्थों का स्थान किसी पहाड़ की तलहटी या किसी नदी के तट पर होता है। वह स्थान सांसारिक कोलाहल से दूर, दूषित वातावरण से रिक्त, मनभावन प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त होता है। ऐसा स्थान ही यात्रिक को मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक शान्ति तथा प्रसन्नता प्रदान करने में समर्थ होता है। ध्यान, साधना, योग, तप और जप आदि के लिए तीर्थों के अतिरिक्त अन्य कोई स्थान उपयुक्त नहीं होता।

तीर्थ की इन्हीं महत्ती विशेषताओं को लिए बड़ौदा से ५० कि.मी. की दूरी पर पावागढ़ तीर्थ स्थित है। दिगम्बर मान्यता के अनुसार इस तीर्थ की स्थापना बीसवें तीर्थंकर भगवान श्रीमुनि सुव्रत स्वामी के समय हुई थी। अत्यन्त पवित्र होने के कारण इसे पावागढ़ के नाम से पुकारा जाता है। उसके बसने-उजड़ने का इतिहास बहुत लम्बा है। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक इसकी समृद्धि, उन्नति और विकास अपने चरमोत्कर्ष पर रही। इन्हीं समृद्धि और प्रसिद्धि से आकर्षित होकर कई विदेशी और विधर्मी इस पर चढ़ आए। कई बार पावागढ़ विजित होकर गर्वोन्न हुआ है और कई बार पराजित होकर लज्जित भी। कई श्रेष्ठी यहां ऐसे हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं जिन्होंने दुष्काल के समय सम्पूर्ण गुजरात का पोषण किया था। एक समय था जब पूरे गुर्जर प्रान्त में ही नहीं; अपितु सम्पूर्ण भारत में इसके भव्यता की चर्चा थी। श्वेताम्बरों में इस तीर्थ को शत्रुंजय और गिरनार की तरह ही पवित्र और पावनकारी माना जाता था। ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी से इसका पतन प्रारम्भ हुआ और फिर वह ऊपर न उठा सका।

इस महातीर्थ की ऐतिहासिकता निर्विवाद है। सम्राट अशोक के वंशधर राजा गंगसिंह ने सन् ८०० ई. में पावागढ के किले का एवं उसमें स्थित जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया था।

पावागढ़ के ईशान कोण में दो कि.मी. की दूरी पर और बड़ौदा के पूर्व २५ कि.मी. की दूरी पर गोधरा से दक्षिण ४२ कि.मी दूर चांपानेर का उल्लेख मिलता है। अब इस स्थान पर छोटा सा बाजार है।

विक्रम की १९वीं शताब्दी में तपागच्छ के मुनि कविराज श्रीदीप विजयजी ने पुराने लेखादि के आधार पर लिखा है कि वि.सं. १११२ वैशाख सुदि पंचमी गुरुवार को पावागढ़ पर चौथे तीर्थंकर अभिनंदन स्वामी एवं जीरावला पार्श्वनाथ की अंजनशलाका-प्रतिष्ठा जैनाचार्य श्रीगुणसागर सूरि के द्वारा कराई गई थी। साथ ही उनकी भक्त शासन देवी कालिका की भी वहां स्थापना की गई थी।

डॉ. भांडारकर द्वारा संशोधित और प्रकाशित अंचलगच्छ की पट्टावली में इसका महत्त्वपूर्ण उल्लेख है कि जयकेसर सूरी चांपानेर के राजा जयसिंह पताई रावल के राज्य में माने हुए आचार्य थे।

पं. जिनहर्ष गणि ने वस्तुपाल चरित्र के तीसरे प्रस्ताव में लिखा है कि गुजरात से मालवा की ओर जाने वाले रास्ते पर गोधरा (गोधा) नाम का नगर था। उस नगर में धूंधल नाम का राजा राज्य करता था। वह धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन कर घोर पाप-कर्म करता था। उसके पूर्वज सोलंकी राजाओं की आज्ञा मानते थे; पर धूंधल ने उनकी आज्ञा में रहना अस्वीकार कर दिया। वह गुजरात से मालवा की ओर जाने वाले व्यापारियों को लूटने लगा। लूटे गए व्यापारियों ने गुजरात के राजा वीरधवल से फरियाद की। व्यापारियों की बात सुनकर वीर धवल ने धूंधल को दंडित करने का निर्णय किया। उसने अपने मंत्री तेजपाल को धूंधल से युद्ध करने की आज्ञा की। अपनी विशाल सेना लेकर तेजपाल गोधरा पहुंचा। तेजपाल और धूंधल के बीच भयंकर संग्राम हुआ। तेजपाल के पराक्रम के आगे धूंधल टिक नहीं पाया। वह हार गया। तेजपाल ने उसे लकड़ी के पिंजरे में बंद कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी विजय की स्मृति में तेजपाल ने वहां एक भव्य महल बनवाया और उस महल में अत्यन्त सुन्दर और कलात्मक २४ तीर्थंकरों का मंदिर निर्मित करवाया।

वहां से वह न्यायप्रिय मंत्री तेजपाल रास्ते में दान की गंगा बहाते हुए (वटप्रद) बड़ौदा आया। यहां उसने जीर्ण हो गए पार्श्वनाथ भगवान के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। बड़ौदा के पास अकोटा गांव में मंत्रीश्वर ने धर्म की अभिवृद्धि के लिए प्रथम तीर्थकर आदिनाथ का मंदिर बनवाया।

वहां से वह मंत्री (दर्भावती) डभोई आया। यहां उसने स्वर्ण-कलशों से सुशोभित कैलाश पर्वत के समान पार्श्वनाथ भगवान का जिन मंदिर बनवाया।

डभोई से वह पावागढ़ आया। पावागढ़ की पवित्रता और मनोहर वातावरण देखकर वह अत्यन्त आनंदित हुआ। उसने यहां पर सर्वतोभद्र नाम का जिन मंदिर निर्मित करवाया।

वि.सं. १६६१ में रचे गए प्रबंध चिंतामणी (वस्तुपाल-तेजपाल प्रबंध) में इस बात का उल्लेख है कि वि.सं. १२८७ में जब तेजपाल ने शत्रुंजय पर्वत पर नंदीश्वर का निर्माण करवाना प्रारंभ किया तब उसने कंटेलिया जाति के पत्थर के १६ खंभे पावक पहाड़ अर्थात् पावागढ़ से जलमार्ग द्वारा पालीताणा मंगवाए थे।

जैन श्वेताम्बर तपागच्छ के सोमसुन्दर सूरि के शिष्य भुवन सुन्दर सूरि हुए हैं। उन्होंने विभिन्न तीर्थों के अनेक स्तोत्रों की रचना की है। उसमें उन्होंने पावागढ़ तीर्थ के स्तोत्र की भी रचना की है। इस स्तोत्र में उन्होंने तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ भगवान की स्तुति की है। इसके सातवें पद का अन्तिम पद इस प्रकार है—

स्तुवे पावके भूधरे संभवं तम् ॥

पावागढ़ तीर्थ को शत्रुंजय महातीर्थ के अवतार के रूप में वर्णन करते हुए उन्होंने पांचवें पद्य में कहा है—

स्थितं पुंडरीकाचलस्थावतारे, अखिल लक्ष्माधर श्रेणि श्रृंगार हारे।
तृतीयं जिनं कुंददन्तं भदन्तं स्तुवे, पाव के भूधरे संभवं तम् ॥

खंभात के निवासी मेघाशाह ने पावागढ़ के ऊपर संभवनाथ भगवान के जिन मंदिर में कालिकाल के विघ्नों का नाश करने वाली आठ देव कुलिकाओं का निर्माण करवाया था।

पावकाचल श्रृंगार श्री संभव जिनालये।
तेनाष्टौ देवकुलिकाः कलिकालहताः कृताः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि.सं. १६४४ में जिनचन्द्र सूरि द्वारा रचित शत्रुंजय गिरि रास में चांपानेर श्रीसंघ का उल्लेख आया है। वह इस प्रकार है :—

विक्रमपुर, मंडोवरउ, सिन्धु जैसलमेर।
सिरोही जालोरनउ, सोरठी चांपानेर ॥२२॥

संघ एक तिहां आविया, भेटण विमल गिरिन्द।
लोकताणी संख्या अनंत, साथे गुरु जिनचन्द ॥२३॥

वि.सं. १५४१ में सोमचारित्र गणि ने गुरुगुण रत्नाकर काव्य की रचना की थी। उसमें उन्होंने मांडवगढ़ के वेल्लाक नाम के संघपति का वर्णन किया है। इस संघपति ने तपागच्छ के सुमति सुन्दर आचार्य की प्रेरणा से ईडरगढ़, जीरावला, आबू, राणकपुर और पावागढ़ का छ'रीपालित संघ निकाला था।

वि.सं. १५०८ में प्राग्वाट सार्दूल ने तपागच्छ के रत्नशेखर सूरि के द्वारा अंजनशलाका कृत २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में से दो प्रतिमाओं को चांपानेर-पावागढ़ में स्थापित किया गया था।

अकबर प्रतिबोधक तपागच्छ के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री हीरसूरिजी के प्रमुख शिष्य आचार्य श्रीसेन सूरिजी अपने गुरु की आज्ञा लेकर वि.सं. १६३२ में चांपानेर पधारे थे। वहां जसवन्त नाम के श्रेष्ठी ने एक मंदिर निर्मित करवाया था उसकी अंजनशलाका-प्रतिष्ठा आचार्य श्री सेन सूरिजी के द्वारा हुई थी।

वि.सं. १७२१ में कवि लक्ष्मी रत्न ने क्षेमा के रास की रचना की थी। उसमें चांपसी मेहता और मुहम्मद बेगढ़ा का वर्णन आया है जो निम्न लिखित है—

गुर्जर देश छे गुणनीलो, पावा नामे गढ़ वेसणो।
मोटा श्री जिन तणा प्रासाद, सरग सरीशुं माडे वाद ॥१॥

वसे सहेर तलेटी तासं चांपानेर नामे सुविलास।
गढ़ मढ़ मंदिर पोल प्रकाश सप्त भूमि मां उत्तम आवास ॥२॥

वरण अढार त्यां सुषि वसे, शोभा देषि मनसु लसें।
वेपारी नी नही रे मणा, सात से हाट सरइयां तणा ॥४॥

पातसाह तिहां परगड़ो राज्य करे मेम्मद बेगड़ो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तर सें गुज्जरनो घणि निणे भुजबले कीधी पोहणि घणि
नगरसेठ मेतो चांपसी, अहनिस धर्मताणि मति वसी ॥

इस तरह पावागढ़ की प्राचीनता के अनगिनत उदाहरण है। इसकी ऐतिहासिकता निर्विवाद रूप से सिद्ध है।

दो सौ वर्ष तक यह तीर्थ श्वेताम्बर जगत से अज्ञात और अपरिचित रहा। दो सौ वर्ष के बाद परमार क्षत्रियोद्धारक, चारित्र चूड़ामणि, जैन दिवाकर, शासन शिरोमणि आचार्य श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी महाराज ने इस तीर्थ का पुनरोद्धार किया। पावागढ़ की तलहट में श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान का भव्य और कलात्मक जिन मंदिर का निर्माण हुआ है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org